International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.340, Volume 04, No. 01(I), January - March, 2022, pp.115-118

सामाजिक उत्तरदायित्वों का साहित्यिक पक्ष

डॉ. नेहा शर्मा*

प्रस्तावना

सामाजिक उत्तरदायित्व नैतिक मूल्यों का एक ढांचा स्वरूप है जो किसी व्यक्ति विशेष से संबंधित समुदाय के हित के लिए अन्य व्यक्तियों और समूहों के साथ काम करने तथा आपसी सहयोग प्रदान करने की प्रक्रिया पर अवलंबित है।

''मां भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्, मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्च सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।''[1]

अर्थात् भाई, भाई से कोई द्वेष ना करें तथा बहन, बहन से कोई द्वेष न रखें। सभी एक दूसरे का समान रूप से आदर–सम्मान करते हुए और आपस में मिलजुल कर अपने अपने कर्मों को करें और एकमत होकर कल्याण भाव से युक्त होकर एक दूसरे से संवाद करें।

सामाजिक उन्नति एवं जन कल्याण हेतु मानव विशेष की सम्पूर्ण जिम्मेदारी एवं उचित भागीदारी की आवश्यकता को वेदों का यह उपयुक्त कथन पूर्ण रूप से समर्थित करता है।

सामाजिक उत्तरदायित्व को समझने से पहले हमें समाज के निर्माण की प्रक्रिया को समझ लेना चाहिए। सर्वज्ञात तथ्यों में से एक है कि मनुष्य समाज की सबसे सूक्ष्म इकाई है। प्रारंभ से कहें तो एक अकेला व्यक्ति भी समाज का निर्माण नहीं कर सकता। इसके लिए दो व्यक्तियों के मध्य संबंध स्थापित होना अत्यंत आवश्यक है। स्त्री और पुरुष का संबंध एक परिवार का निर्माण करता है। कई परिवार मिलकर एक विशेष समाज का निर्माण करते हैं। दो व्यक्तियों का मित्रवत संबंध भी सामाजिक घटकों में से एक है जो एक विस्तृत समूह का निर्माण करता है।

समाज में रहने वाले व्यक्तियों का कर्तव्य है कि वे अपने आचरण से निजी हितों के साथ–साथ सामाजिक हितों की भी रक्षा करें। धार्मिक संतो ने भी उपदेश दिया है कि **''स्वयं जीयो और दूसरों को जीने दो''** इस अवधारणा पर एक कल्याणकारी संदेश अंतर्निहित है। व्यावहारिक तौर पर अपने निजी प्रयोजनों को साधने के साथ–साथ दूसरे सामाजिक प्राणियों के कल्याण की भी भावना हमारे अंतःकरण में पुष्पित होनी चाहिए।

परोपकार एवं जनहित की अवधारणा अगर प्रत्येक मनुष्य के हृदय में सम्मिलित हो जाए तो सामाजिक कल्याण की चिंता ही नष्ट हो जाए। लोकमत को जानकर उसकी उपेक्षा ना करना तथा उसका आदर करके समाज में कालवश चली आ रही कुरीतियों को मिटाने का प्रयास करना, स्वयं के व्यवहार में सत्संग, अध्यात्म और सेवा का भाव सम्मिलित करके अपने उदाहरण द्वारा समाज को एक नई दिशा का मार्गदर्शन देना सामाजिक उत्तरदायित्वों की व्याख्या में सम्मिलित होता है। मनुष्य को चाहिए कि वह धर्म एवं अध्यात्म के द्वारा अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिए कठिन परिश्रम करें क्योंकि परोपकार और सेवा का यह उत्कृष्ट समन्वय उस व्यक्ति विशेष स्वयं की समाज की और संपूर्ण राष्ट्र की प्रगति का कारण बनता है। इन सामाजिक उत्तरदायित्वों के संदर्भ में नैतिक मूल्यों एवं कर्तव्यों का व्याख्यान करते हुए हमारे प्राचीन साहित्य ग्रंथों में प्रचुर मात्रा में विवरण प्राप्त होता है।

---

[6] व्याख्याता, संस्कृत, एस.एस.जी. पारीक स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।

सामाजिक उत्तरदायित्वों का महत्व

किसी सौंपे गए कार्य को करने की जिम्मेदारी उत्तरदायित्व कहलाती है तथा समाज के प्रति व्यक्ति विशेष के जो दायित्व हैं, उन्हें अपनी क्षमता के अनुसार पूरा किया जाना सामाजिक उत्तरदायित्व के अंतर्गत आता है।

वर्तमान में प्रचलित सामाजिक मानदंडों और नैतिक मूल्यों को व्यवहार में लाने की प्रतिक्रिया सामाजिक उत्तरदायित्व की श्रेणी में आती है। उपर्युक्त दृष्टिकोण किसी व्यक्ति विशेष के सामाजिक एवं पर्यावरणीय हितों के प्रति उत्तरदायिता पर बल देता है। यह बताता है कि हम उन सभी तथ्यों के लिए जवाबदेह हैं जो हमारे सामाजिक पर्यावरण और पारिस्थितिक तंत्र से संबंधित है।

ऋग्वेद की ऋचा के अनुसार–

"संगच्छध्वंसंवदध्वं"[2]

अर्थात् साथ चलें, साथ मिलकर एक समान बोले।

उपरोक्त वेद कथन समाज के प्रति हमारे उत्तरदायित्व एवं परस्पर सहयोग की भावना को प्रदर्शित करता है। स्पष्ट है कि वैदिक साहित्य में भी समाज एवं सामाजिक हितों को प्रथम श्रेणी के अंतर्गत रखा गया है।

एक व्यक्ति विशेष अपनी सामाजिक उत्तरदायित्व को निभाता है तो वह सांसारिक जीवन के विभिन्न पक्षोंके हित में समत्व स्थापित करने का भी काम करता है। सर्वमान्य है कि जिससे हम लाभपाते हैं उसके प्रति कृतज्ञ हो जाते हैं इसी परंपरा में सामाजिक हित एवं जन कल्याण हेतु हम प्रेरित किए जाते हैं। सामाजिक नीतियों का अनुसरण करके तथा संवेग निर्णय लेकर कार्यों को क्रियान्वित करना जो समाज के उद्देश्यों एवं नैतिक मूल्य की दृष्टि से उपयुक्त होते हैं यही सामाजिक उत्तरदायित्व कहलाते हैं जिन की उपयोगिता एवं महत्ता इनके उद्देश्य एवं प्रयोजन में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

सामाजिक उत्तरदायित्व के क्षेत्र

सामाजिक उत्तरदायित्व किसी व्यक्ति विशेष का वह कर्तव्य है जिसमें वह एक बड़े स्तर पर सामाजिक विकास हेतु अन्य व्यक्तियों और संगठनों के साथ सहयोग करते हुए समाज और पर्यावरण के कल्याण के मध्य उचित संतुलन बनाए रखता है।

सामाजिक उत्तरदायित्व का प्रमुख क्षेत्र कुशलतापूर्वक निजी लक्ष्यों की पूर्ति कर वांछित लाभ अर्जित करते हुए समाज, समुदाय एवं किसी विशेष संगठन के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करना है।

"येषाम् न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुविभारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।"[3]

अर्थात जिन लोगों के पास न विद्या है, न तप है, न दान है, न ज्ञान है, न शील है, न गुण है, न धर्म है, वे मनुष्य इस पृथ्वी लोक पर भार बन कर रहते हैं तथा मनुष्य रूप में पशु के समान विचरण करते हैं।

भर्तृहरि का यह नीति युक्त वचन स्पष्ट करता है कि मानव समाज में निजी कल्याण तथा मनुष्य रूप में अपनी पहचान सिद्ध करने के लिए विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, गुण और धर्म का चारित्रिक समावेश होना अत्यंत आवश्यक है। व्यक्ति विशेष के ये चारित्रिकगुण उसके निजी जीवन एवं सामाजिक जीवन की नैतिक प्रगति के लिए उत्तरदायी होते हैं और यही सदाचरण और अच्छी आदतों का विकास सामाजिक जीवन की एक स्वाभाविक देन होती है जो स्पष्ट रूप से सामाजिक विकास से पृथक नहीं होती।

"शुचित्वं त्यागिता शौर्यं सामान्य सुखदुःखयो।
दाक्षिण्यं चानुरक्तिश्च सत्यता च सुहृद्गुणाः ।।"[4]

अर्थात पवित्रता, उदारता, वीरता, सुख–दुःख में सम्मिलित होना, कुशलता, प्रेम और सत्यता ये सभी मित्र के गुण होते हैं। सामाजिक जीवन तथा उसके विकास के लिए आवश्यक है कि सामाजिक इकाइयों साथ उचित सामंजस्य बनाया जाए तथा परस्पर मैत्री का भाव विकसित किया जाए।

सामाजिक विकास और उन्नति के लिए आवश्यक है की सभी सामाजिक प्रतिक्रियाओं एवं सामाजिक अंतः प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाए क्योंकि इसके बिना सामाजिक समस्याओं का समाधान नितांत असंभव है। सामाजिक मुद्दों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करना तथा समस्याओं के समाधान हेतु सतत् प्रयास करते रहना एवं साथ ही जनसमूहों, संस्थाओं और समितियों को भी इन प्रतिक्रियाओं में सम्मिलित करना सामाजिक उत्तरदायित्व के क्षेत्र के अंतर्गत आता है।

साहित्यिक पक्ष

भारतीय संस्कृति सत्य, त्याग, तपस्या, धर्म एवं अध्यात्म जैसे नैतिक मूल्यों की अवधारणा पर अवलंबित है। हमारे प्राचीन वेदों, पुराणों, धर्मशास्त्र तथा लौकिक एवं अलौकिक साहित्य में भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों का दर्शन प्राप्त होता है। हमारी सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप हृदय एवं मन को उन्नत बनाने वाले कार्य एवं समाज के प्रति कुछ ऐसे कर्तव्य जिनका समाज से व्यक्ति विशेष अपेक्षा रखता है, ऐसे सामाजिक उत्तरदायित्वों केनिर्वहन की शिक्षा और उपदेश वैदिक एवं अलौकिक दोनों ही साहित्य में प्राप्त होता है।

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधयत।

क्षुरस्य धारा निकिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।।"[5]

हे मनुष्य उठो, जागो, सचेत हो जाओ! श्रेष्ठ पुरुषों के पास जाकर सर्वश्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करो क्योंकि त्रिकालदर्शी विद्वान पुरुष इस पथ को चाकू कीतेज धार के समान बहुत कठिन बताते हैं।

उपरोक्त कथन के माध्यम से मनुष्य को सामाजिक कल्याण हेतु जागरुक होने तथा अध्यात्म एवं धार्मिक अवचेतना के द्वारा उन्नति के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा दी गई है जो स्पष्ट रूप से मानव विशेष को सामाजिक उत्तरदायित्व की पूर्ति हेतु मार्गदर्शन दे रही है।

भवभूति के अनुसार–

"जननीजन्मभूमिश्चस्वर्गादपिगरीयसी"[6]

अर्थात् जन्म देने वाली माता तथा जहां आपने जन्म लिया है, वह स्वर्ग से भी बढ़कर है अतः उसके प्रति सत्यनिष्ठा अवश्य होनी चाहिए।

समाज एवं राष्ट्र के प्रति सच्ची निष्ठा एवं वफादारी का संदेश देने वाला यह उपर्युक्त कथन हमें प्रेरित करता है कि हम संगठित होकर एक समूह में संगठित होकर निजी हितों को भी ध्यान में रखते हुए जन कल्याण की भावना को प्रदर्शित करने के साथ–साथ सामाजिक उन्नति की दिशा की ओर निरंतर बढ़ते चलें। जिस सनातन मार्ग का अनुसरण हमारे पूर्वजों ने किया है उसी मार्ग पर हम एकसाथ मिलकर चलें।

उपसंहार

सामाजिक संबंधों में सशक्तता और सकारात्मकता मनुष्य विशेष की सांसारिक उत्तरदायिता को प्रभावित करती है। सामाजिक परिवेश से जुड़े रहकर अपने निजी जीवन में कुछ कर दिखाने की सदिच्छा तथा उसके समुचित विकास के लिए धैर्य रखना मनुष्यता के अंतर्गत आते हैं। परंतु वर्तमान में समाज के प्रति विश्वास और सामाजिक जीवन के कल्याण हेतु प्रोत्साहन निरंतर कम होता जा रहा है। लोग अपनी सामाजिक भागीदारी को निभाने से कतराने लगे हैं। सहयोग, करुणा, दया आदि नैतिक गुणों में सतत गिरावट आती जा रही है। मानवीय गुणों का यह ह्रास सामाजिक उन्नति में बाधक बन रहा है। यदि इस समाज को समृद्ध, शांतिपूर्ण एवं पर्यावरण–संवेद्य बनाना है तो एक सकारात्मक पहल अत्यंत आवश्यक है। धरती की आश्वस्ति सुनिश्चित करने के लिए तथा सामाजिक चेतना लाने के लिए एक रचनात्मक परिवर्तन अनिवार्य है।

"ऊँ स्हनाववतु। सहनौभुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तुमाविद्विषावहै।।"[7]

अर्थात् हे परमेश्वर! आप हम शिष्य और आचार्य दोनों की ही रक्षा करें। हम दोनों को साथ–साथ विद्या का फल प्राप्त हो और हम दोनों एक साथ विद्या प्राप्त करने का सामर्थ्य प्राप्त करें। हम दोनों ने जो पढ़ा है, वह तेजस्वी हो और हम दोनों कभी भी परस्पर द्वेष ना करें। निष्कर्षतः यदि सामाजिक उन्नति एवं नैतिक विकास में निरंतरता बनाए रखनी है तो मानव जीवन की शिक्षा, आचार, विचार, व्यवहार आदि में परंपरागत साहित्यिक दृष्टि को भी सम्मिलित करना चाहिए क्योंकि परंपरा की उपेक्षा करना समाज को धुरी विहीन बना देती है। उन्नत भविष्य की परिकल्पना को साकार करने के लिए मनुष्य जीवन में विशेष रुप से युवा स्तर पर साहित्यिक अवलोकन अत्यंत आवश्यक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अथर्ववेद 3.30.3
2. ऋग्वेद 10.181.2
3. नीति शतकम्
4. सुभाषितम्
5. कठोपनिषद
6. उत्तररामचरितम्
7. कठोपनिषद

❖◆❖